श्रीमती पुष्पलता जैन, एम. ए. (हिन्दी, भाषाविज्ञान) (नागपुर)

जैन रहस्यवाद बनाम अध्यात्मवाद

सृष्टि के सर्जक तत्त्व अनादि और अनन्त हैं। उनकी सर्जनशीलता प्राकृतिक शक्तियों के संगठित रूप पर निर्भर करती है। पर उसे हम प्रायः किसी अज्ञात शक्ति-विशेष से सम्बद्ध कर देते हैं, जिसका मूल कारण मानसिक दृष्टि से स्वयं को असमर्थ स्वीकार करना है। इसी असामर्थ्य में सामर्थ्य पैदा करने वाले 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' तत्त्व की गवेषणा और स्वानुभूति की प्राप्ति के पीछे हमारी रहस्यभावना एक बहुत बड़ा सम्बल है। यही रहस्य-भावना एक गुह्य तत्त्व है।

धर्म और रहस्यभावना

गुह्य तत्त्वों का सम्बन्ध पराबौद्धिक ऋषि-महर्षियों की गुह्य-साधना की पराकाष्ठा और उसकी विशुद्ध तपस्या से जुड़ा हुआ है। प्रत्येक दृष्टा के साक्षात्कार की दिशा, अनुभूति और अभिव्यक्ति समान नहीं हो सकती। अन्य प्रत्यक्ष-दर्शियों की अपेक्षा पृथक् होने की ही सम्भावना अधिक रहा करती है। फिर भी लगभग समान मार्गों को किसी एक पन्थ या सम्प्रदाय से जोड़ा जाना भी अस्वाभाविक नहीं। जिस मार्ग को कोई चुम्बकीय व्यक्तित्व प्रस्तुत कर देता है, उससे उसका चिरन्तन सम्बन्ध जुड़ जाता है। आगामी शिष्य-परम्परा उसी मार्ग का अनुसरण करती रहती है। यथासमय इसी मार्ग को अपनी परम्परा के अनुकूल कोई नाम दे दिया जाता है और अन्त में हम अपनी भाषा में धर्म भी कहने लगते हैं। इसी प्रकार रहस्यभावना के साथ धर्म का अविनाभाव सम्बन्ध स्थापित कर कालान्तर में उसे भिन्न-भिन्न धर्मों की सीमा में बाँध दिया जाता है।

रहस्य शब्द का अर्थ

'रहस्य' शब्द 'रहस्' पर आधारित है। 'रहस्' शब्द 'रह्' **त्यागार्थक धातु में असुन्** प्रत्यय लगाने पर बनता है।[1] तदनन्तर यत् प्रत्यय जोड़ने पर रहस्य शब्द निर्मित होता है, जिसका विग्रह होगा—रहसि भवं रहस्यम्।[2] अर्थात् रहस्य एक ऐसी मानसिक प्रतीति अथवा अनुभूति है जिसमें साधक ज्ञेय वस्तु के अतिरिक्त ज्ञेयान्तर वस्तुओं की वासना से असंपृक्त हो जाता है।

'रहस्' शब्द का द्वितीय अर्थ विविक्त, विजन, छन्न, निःशलाक, रहः, उपांशु और एकान्त है।[3] विजन में होने वाले को रहस्य कहते हैं (रहसिभवं रहस्यम्)। गुह्य अर्थ में भी रहस्य शब्द

---

१ सर्वधातुभ्योऽसुन् (उणादिसूत्र-चतुर्थपाद)।

२ तत्र भवः दिगादिभ्यो यत् (पाणिनि सूत्र ४.३.५३,५४)।

३ विविक्त विजनः छन्नानिः शलाकास्तथा रहः।
रहस्योपांशु चालिगे रहस्यं तदभवे त्रिषु॥
—अमरकोश, २.८, २२-२३, अभिधान चिन्तामणि कोश, ७४१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयोग हुआ है।[४] **श्रीमद्भगवद्गीता** और **उपनिषदों** में रहस्य शब्द का विशेष प्रयोग दिखाई देता है। वहां एकान्त अर्थ में **"योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः** (६.१०) तथा मर्म अर्थ में **"भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदमुत्तनम्"** और गुह्यार्थ में **"गुह्याद् गुह्यतरं** (१८.६३) **परमगुह्य** (१८.३८) आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इसी रहस्य को आध्यात्मिक क्षेत्र में अनुभूति के रूप में प्रस्फुटित किया गया है और काव्यात्मक क्षेत्र में रस के रूप में। रहस्य के अन्त में दोनों क्षेत्रों के मर्मज्ञों ने स्वानुभूति को चिदानन्द चैतन्य अथवा ब्रह्मानन्द सहोदर नाम समर्पित किया है।

साधक और कवि की रहस्यभावना

साधक और कवि की रहस्य-भावना में किञ्चित् अन्तर है। साधक रहस्य का स्वयं साक्षात्कार करता है, पर कवि उसकी भावात्मक भावना करता है। यह आवश्यक नहीं कि योगी कवि नहीं हो सकता अथवा कवि योगी नहीं हो सकता। काव्य का सम्बन्ध भाव से विशेष होता है और साधक की रहस्यानुभूति भी वहीं से जुड़ी हुई है। अतः यह प्रायः देखा जाता है कि उक्त दोनों व्यक्तित्व समरस होकर आध्यात्मिक साधना करते रहे हैं। यही कारण है कि योगी कवि हुआ है और कवि योगी हुआ है। दोनों ने रहस्यभावना की भावात्मक अनुभूति को अपना स्वर दिया है।

प्रस्तुत निबन्ध में हमने उक्त दोनों व्यक्तित्वों की सजगता को परखने का प्रयत्न किया है। इसलिए रहस्यवाद के स्थान पर हमने रहस्यभावना शब्द को अधिक उपयुक्त माना है। भावना अनुभूतिपरक होती है और वाद का सम्बन्ध अभिव्यक्ति और दर्शन से अधिक होता है। अनुभूति असीमित होती है और वाद किसी धर्म, सम्प्रदाय अथवा साहित्य से सम्बद्ध होकर ससीमित हो जाता है। इस अन्तर के होते हुए भी रहस्य-भावना का सम्बन्ध अन्ततोगत्वा चूंकि किसी साधना-विशेष से सम्बद्ध रहता है इसलिए वह भी कालान्तर में अनुभूति के माध्यम से एक वाद बन जाता है।

रहस्यवाद : अभिव्यक्ति और प्रयोग

रहस्यवाद को अंग्रेजी में Mysticism कहा जाता है। यह शब्द ग्रीक के Mystikas शब्द से उद्भूत हुआ है, जिसका अर्थ है—किसी गुह्य ज्ञान की प्राप्ति करने के लिए दीक्षित शिष्य।[५] उस दीक्षित शिष्य द्वारा व्यक्त उद्गार अथवा सिद्धान्त को Mystesism कहा गया है। इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य में सन् १६०० के आसपास हुआ है।[६]

जहाँ तक हिन्दी साहित्य का प्रश्न है, रहस्यवाद शब्द का प्रयोग उसमें पाश्चात्य साहित्य के इसी अंग्रेजी शब्द Mysticism के रूपान्तर के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सन् १६२७ में सरस्वती पत्रिका के मई अंक में किया था। लगभग इसी समय अवध उपाध्याय तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस शब्द का उपयोग किया था। जैसा ऊपर हम देख चुके हैं प्राचीनकाल में 'रहस्य' जैसे शब्द साहित्यिक क्षेत्र में आ चुके थे पर उसके पीछे अधिकांशतः अध्यात्मरस में सिक्त साधनापथ जुड़ा हुआ था। उसकी अभिव्यक्ति

---

४ गुह्यं रहस्यं······। —अभिधान चिन्तामणि कोश, ७४२।

५ The concise Oxford Dictionary, p. 782. (word-Mystic.) Oxford 1961. अनन्देल का अंग्रेजी शब्दकोश भी देखिए।

६ Bonquet, p.c. Comperative Religion (Petiean series, 1953) p. 286.

आचार्यप्रवर श्री आनन्द ऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भले ही किसी भाव और भाषा में होती रही हो पर उनकी सहजानुभूति सार्वभौमिक रही है। जहाँ तक उसकी अभिव्यक्ति का प्रश्न है, उसे निश्चित ही साक्षात्कार-कर्ता गूंगे के गुड़ की भांति पूर्णतः व्यक्त नहीं कर पाता। अपनी अभिव्यक्ति में सामर्थ्य लाने के लिए वह तरह-तरह के साधन अवश्य खोजता है। उन साधनों में हम विशेष रूप से संकेतमयी और प्रतीकात्मक भाषा को ले सकते हैं। ये दोनों साधन साहित्य में भी मिल जाते हैं।

यद्यपि रहस्यवाद जैसा शब्द प्राचीन भारतीय योगसाधनाओं में उपलब्ध नहीं होता, पर रहस्य शब्द का प्रयोग अथवा उसकी भूमिका का विनियोग वहाँ सदैव से होता रहा है। इसलिए भारतीय साहित्य के लिए यह कोई नवीन तथ्य नहीं रहा। अतः प्राचीन भारतीय काव्य में पाश्चात्य रहस्यवाद की परिभाषा को शब्दशः खोजना उपयुक्त नहीं है। उसका तद्रूप में पाया जाना यहाँ सम्भव भी नहीं। जिस रहस्यवाद शब्द का प्रयोग १९वीं शताब्दी में प्रारम्भ में हुआ, उसकी भावधारा को उसके पूर्व उसी रूप में कैसे प्राप्त किया जा सकता है? और फिर यदि सांस्कृतिक और भौगोलिक भिन्नता हो, तब तो और भी कठिन हो जाता है। साधारण समानतायें मिलना दूसरी बात है और उन्हीं को आधार बना लेना दूसरी बात है। अतः पाश्चात्य रहस्यवाद को भारतीय अध्यात्मवाद में ढूंढ़ना उचित नहीं कहा जा सकता।

रहस्यभावना का वैभिन्य

रहस्यभावना का सम्बन्ध चरम तत्त्व को प्राप्त करने से रहा है और चरम तत्त्व का सम्बन्ध किसी एक धर्म अथवा योगसाधना विशेष से रहना सम्भव नहीं। इसलिए रहस्यभावना की पृष्ठभूमि में साधक की जिज्ञासा और उसका आचरित सम्प्रदाय विशेष महत्त्व रखता है। सम्प्रदायों और उनके आचारों का वैभिन्न्य स्वभावतः विचारों और साधनाओं में विभिन्नता पैदा कर देता है। इसलिए साधारण तौर पर आज जो यह मान्यता है कि रहस्यवाद का सम्बन्ध भारतीय साधनाओं में मात्र वैदिक-साधना में ही है, गलत है। प्रत्येक सम्प्रदाय का साधक अपने किसी-न-किसी आप्तपुरुष में अद्वैत तत्त्व की स्थापना करने की दृष्टि से उनके ही द्वारा निर्दिष्ट पथ का अनुगमन करता है और अलौकिक स्वसंवेद्य अनुभवों और रहस्य भावों को प्रतीक आदि माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न करता है। यही कारण है कि आधुनिक रहस्यवाद की परिभाषा में भी मतवैभिन्न्य देखा जाता है।

इसके बावजूद अधिकांश साधनाओं में इतनी समानता दिखाई देती है कि जैसे वे हीनाधिक रूप से किसी एक की सम्प्रदाय से सम्बद्ध हों। यह अस्वाभाविक भी नहीं, क्योंकि प्रत्येक साधक का मूल लक्ष्य उस अदृष्ट शक्तिविशेष को आत्मसात करना है। उसकी प्राप्ति में दर्शन, ज्ञान और चारित्र की समन्वित त्रिवेणी-धारा का पवित्र प्रवाह अपेक्षित है। रहस्यभावना की भूमिका में इन तीनों का संगम है। परम सत्य या परमात्मा से आत्मसाक्षात्कार के स्वरूप का वर्णन सभी साधक एक जैसा नहीं कर सके, क्योंकि वह अनादि, अनन्त और सर्वव्यापक है और उसकी प्राप्ति के मार्ग भी अनन्त हैं। अतः अनेक कथनों से उसे व्यंजित किया जाना स्वाभाविक है। उनमें जैनदर्शन के अनुसार किसी का भी कथन गलत नहीं कहा जा सकता। रहस्यभावना में वैभिन्न्य पाये जाने का यही कारण है। संभवतः पदमावत में जायसी ने निम्न छन्द से इसी भाव को दर्शाया है—

"विधना के मारग हैं तेते। सरग नखत तन रोवां जेते॥"

इस वैभिन्य के होते हुए भी सभी का लक्ष्य एक ही रहा है—परम-सत्य की प्राप्ति और परमात्मा से आत्मसाक्षात्कार।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहस्यवाद की परिभाषा

जहाँ वाद होता है वहाँ विवाद की श्रृंखला तैयार हो जाती है। आत्मसाक्षात्कार से की गई योगसाधना के साथ भी वाद जुड़ा और रहस्यवाद की परिभाषा में अनेकरूपता आई। इसलिए साहित्यकारों ने रहस्यभावना को कहीं दर्शनपरक माना और कहीं साधनापरक। कहीं भावात्मक (प्रेमप्रधान) तो कहीं प्रकृतिमूलक, कहीं यौगिक तो कहीं अभिव्यक्तिमूलक। परिभाषाओं का यह वैविध्य उसकी अनुभूति की विभिन्नता पर ही आधारित रहा है। इतना ही नहीं, कुछ विद्वानों ने तो रहस्यभावना का सम्बन्ध चेतना, संवेदन, मनोवृत्ति और चमत्कारिता से भी जोड़ने का प्रयत्न किया है। इसलिए आज तक रहस्यवाद की परिभाषा सर्वसम्मत नहीं हो सकी।

भारतीय और भारतीयेतर विद्वानों द्वारा प्रस्तुत रहस्यवाद की विविध परिभाषाओं का उल्लेख करना, यहाँ विस्तार के भय से संभव नहीं है। मात्र हम उनका नामोल्लेख कर सकते हैं। पाश्चात्य विद्वानों में Albert Forges,[७] Nettleship,[८] walter Stace,[९] Pfleiderer,[१०] Pringle Panthison,[११] E. Caird,[१२] W. E. Hocking,[१३] William James,[१४] Von Hastman,[१५] Ku. Underhill,[१६] Frank Gayner[१७] प्रभृति विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें अंडरहिल, हाकिंग और फ्रेंक गैनार को छोड़कर शेष सभी विद्वानों की परिभाषायें मनोदशा से विशेष सम्बद्ध हैं। उन्होंने स्वानुभूति को किसी साधना-विशेष से नहीं जोड़ा। अंडरहिल, हाकिंग और फ्रेंक गैनार की परिभाषायें रहस्यवाद की सही स्थिति पर विचार करती हुई दिखाई देती हैं। रहस्यवाद को हम केवल मनोदशा से ही नहीं जोड़ सकते, वह तो वस्तुतः किसी एक साधनापथ पर आचरित होकर आत्मसाक्षात्कार करने का एक मार्ग है।

भारतीय विद्वानों में राधाकृष्णनन,[१८] महेन्द्रनाथ सरकार,[१९] राधाकमल मुकर्जी,[२०] वासुदेव जगन्नाथ कीर्तिकर,[२१] रानाडे,[२२] रामचन्द्र शुक्ल,[२३] जयशंकर प्रसाद,[२४] रामकुमार वर्मा,[२५] महादेवी

---

७ Mystical Phenomena (London, 1926.) p. 3.
८ Mysticism in Religion by Dr. W. R. Inge (Newyark) p. 25.
९ The teachings of the mystics (Newyark, 1960) p. 238.
१० Mysticism in Religion by Dean. Inge. p. 25.
११ Mysticism in Religion by Inge. p. 25.
१२ वही p. 25.
१३ 'रहस्यवाद', परशुराम चतुर्वेदी से उद्धृत, पृ० २०
१४ The Varieties of Religious Experience a study in Human Nature (Longmans 1929) p. p. 379. 429
१५ भक्तिकाव्य में रहस्यवाद, पृ० १२.
१६ वही पृ० १३ (Practical Mysticism by Under Hill. p. 3)
१७ 'Mysticism Dictionaries' by Frank Gayner.
१८ Eastern Religion and western thoughts., p. 61.
१९ Mysticism in Bhagavad Gita (Calcutta 1944) p. 1 (Preface)
२० Mysticism theory and Art, P. XII.
२१ Studies in Vedanta. Bombay. 1924. p. p. 150-160.
२२ Mysticism in Maharashtra, p. p. 1. 2.
२३ काव्य में रहस्यवाद (आ० रामचन्द्र शुक्ल)
२४ काव्य, कला तथा अन्य निबन्ध—प्रसाद
२५ कबीर का रहस्यवाद, पृ० ६ (डा. रामकुमार वर्मा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्मा,[२६] परशुराम चतुर्वेदी,[२७] हजारीप्रसाद द्विवेदी,[२८] प्रेमसागर जैन,[२९] नेमिचन्द्र शास्त्री,[३०] कस्तूरचन्द्र कासलीवाल,[३१] त्रिगुणायत,[३२] रूपनारायण पाण्डेय,[३३] वासुदेवसिंह[३४] आदि विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें कतिपय परिभाषाओं को छोड़कर शेष परिभाषाओं में विद्वानों ने रहस्यवाद को किसी एक दृष्टिकोण को लेकर विचार किया है। किसी ने उसे समाजपरक माना है तो किसी ने विचारपरक, किसी ने अनुभूतिजन्य माना है तो किसी ने ज्ञानजन्य। किसी ने आचार-प्रधान माना है तो किसी ने अध्यात्मप्रधान, किसी ने उसकी परिभाषा को विशुद्ध मनोविज्ञान पर आधारित किया है तो किसी ने दर्शन पर, किसी ने उसे जीवनदर्शन माना है तो किसी ने उसे व्यवहारप्रधान बताया है। अतः परिभाषा को एकाङ्गिता के संकीर्ण दायरे से हटाकर उसे सर्वाङ्गीण बनाने की दृष्टि से हम अपनी परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं।

"रहस्यभावना एक ऐसा आध्यात्मिक साधन है जिसके माध्यम से साधक स्वानुभूतिपूर्वक आत्मतत्त्व से परमतत्त्व में लीन हो जाता है।" यही रहस्यभावना अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आकर 'रहस्यवाद' कही जा सकती है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अध्यात्म की चरमोत्कर्ष अवस्था की अभिव्यक्ति का नाम रहस्यवाद है।

परिभाषा का विश्लेषण

इस परिभाषा में हम रहस्यवाद की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

१. रहस्यभावना एक **आध्यात्मिक साधन** है। अध्यात्म से तात्पर्य तत्त्वचिन्तन है, जिसमें व्यक्ति सम्यक्चारित्र का परिपालन करता हुआ सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की आराधना करता है।

२. **स्वानुभूति**—रहस्यवाद की अन्यतम विशेषता है स्वानुभूति। बिना स्वयं की प्रत्यक्ष अनुभूति के साधक साध्य को प्राप्त नहीं कर सकता। इसी को हम शास्त्रीय भाषा में सम्यग्दर्शन कह सकते हैं। अनुभूति के उपरान्त ही श्रद्धा दृढ़तर होती चली जाती है।

३. **आत्मतत्त्व**—आध्यात्मिक साधना का केन्द्र है। संसरण का मूलकारण है आत्मतत्त्व पर सम्यक् विचार का अभाव। आत्मा का मूल स्वभाव क्या है? और वह मोहादि विकारों से किस प्रकार जन्मान्तरों में भटकता है? इत्यादि जैसे प्रश्नों का समाधान खोजने का प्रयत्न किया जाता है।

४. **परमपद**—में विलीन हो जाना रहस्यवाद की प्रमुख अभिव्यक्ति है। इसमें साधक आत्मा की इतनी पवित्र अवस्था तक पहुँच जाता है कि वह स्वयं परमात्मा बन जाता है। आत्मा और परमात्मा का एकाकारत्व एक ऐसी अवस्था है, जहाँ साधक समस्त दुःखों से विमुक्त होकर

---

२६ महादेवी का विवेचनात्मक गद्य

२७ रहस्यवाद, पृ. २५.

२८ हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. ४३८

२९ हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि, पृ. ४ (भाग २)

३० हिन्दी साहित्यः एक परिशीलन

३१ हिन्दी पद-संग्रह, प्रस्तावना, पृ. २०

३२ कबीर की विचारधारा

३३ भक्तिकाव्य में रहस्यवाद, पृ. ३४९

३४ अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद, पृ. १३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिर्वचनीय शाश्वत चिदानन्द चैतन्यरस का पान करने लगता है। इसीको शास्त्रीय परिभाषा में हम निर्वाण अथवा मोक्ष कहते हैं।

रहस्यवाद की उक्त परिभाषा में अध्यात्म और दर्शन विशेष महत्त्व रखता है। अध्यात्म-तत्त्व स्वयं में एक गुह्य तत्त्व है, जिसके निरावृत होने पर अपवर्ग की प्राप्ति हो जाती है। इस गुह्य तत्त्व का सम्बन्ध समूची सृष्टिप्रक्रिया से है, जो अनादि और अनन्त है और जिसका कर्ता-हर्ता-धर्ता ईश्वर जैसा कोई व्यक्ति नहीं है, उसका कर्तृत्व और जीवन-संचालन भी रहस्य बना हुआ है।

रहस्यवाद और अध्यात्मवाद

अध्यात्म अन्तस्तत्त्व की निश्छल गति-विधि का रूपान्तर है। उसका साध्य परमात्मा का साक्षात्कार और उससे एकरूपता की प्रतीति है। यह प्रतीति किसी-न-किसी साधनापथ अथवा धर्म पर आधारित हुए बिना सम्भव नहीं। साधारणतः विद्वानों का यह मत है कि धर्म या सम्प्रदाय को रहस्यवाद के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता, क्योंकि धर्म और सम्प्रदाय ईश्वरीय-शास्त्र (Beology) के साथ जुड़ा रहता है। इसमें विशिष्ट आचार, बाह्य पूजन-पद्धति, साम्प्रदायिक व्यवस्था आदि जैसी बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है, जो रहस्यवाद के लिए उतने आवश्यक नहीं।[३५]

चतुर्वेदीजी का यह कथन तथ्यसंगत प्रतीति नहीं होता। ईश्वरीय शास्त्र का सम्बन्ध प्रत्येक धर्म अथवा सम्प्रदाय से उस रूप में नहीं, जिस रूप में वैदिक तथा ईसाई धर्म में है। जैन तथा बौद्ध दर्शन में ईश्वर को सृष्टि का कर्ता-हर्ता-धर्ता नहीं माना गया। साथ ही बाह्य पूजन-पद्धति, कर्मकाण्ड आदि का सम्बन्ध भी जैन, बौद्ध धर्मों के मूल रूपों में नहीं मिलता। ये तत्त्व तो श्रद्धा और भक्ति के विकास के सूचक हैं। उक्त धर्मों का मूल तत्त्व तो संसरण के कारणों को दूर कर निर्वाण की प्राप्ति करना है। इसी को हम तत्तद् धर्मों का रहस्यवाद भी कह सकते हैं।

रहस्यवाद का सम्बन्ध, जैसा हम पहले कह चुके हैं, किसी-न-किसी धर्म-विशेष से अवश्य रहेगा। ऐसा लगता है, अभी तक भारतीय रहस्यवाद की व्यवस्था और उसकी परिभाषा मात्र वैदिक दर्शन और संस्कृति को मानदण्ड मानकर की जाती रही है। ईसाई धर्म भी इस सीमा से बाहर नहीं है। इन धर्मों में ईश्वर को कर्ता आदि स्वीकार किया गया है और इसीलिए रहस्यवाद को उस ओर अधिक मुड़ जाना पड़ा। परन्तु जहां तक श्रमण संस्कृति और दर्शन का प्रश्न है, वहाँ तो इस रूप में ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं। आत्मा ही परमात्मपद प्राप्त कर तीर्थंकर अथवा बुद्ध बन सकता है।

जैनधर्म नास्तिक नहीं

जैन धर्म और दर्शन को कुछ विद्वानों ने नास्तिक दर्शनों की श्रेणी में बैठा दिया है, यह आश्चर्य का विषय है। इसी कल्पना पर यह मन्तव्य व्यक्त किया जाता है कि जैनधर्म और साहित्य में रहस्यवाद हो ही नहीं सकता, क्योंकि यह वेद और ईश्वर को स्वीकार नहीं करता। यही मूल में भूल है। प्राचीनकाल में जब वैदिक संस्कृति का प्राबल्य था तब नास्तिक की परिभाषा "वेद निन्दको नास्तिकः" के रूप में निश्चित की गई। परिभाषा के इस निर्धारण में तत्कालीन परिस्थितियों का विशेष हाथ था। वेदनिन्दक अथवा ईश्वर को सृष्टि का कर्ता-धर्ता के रूप में स्वीकार न करने वाले सम्प्रदायों में प्रमुख सम्प्रदाय थे—चार्वाक, जैन और बौद्ध। इसलिए उनको नास्तिक कह दिया गया। इतना ही नहीं, निरीश्वरवादी मीमांसा और सांख्य जैसे वैदिक दर्शनों को भी नास्तिक हो जाना पड़ा।

---

३५ रहस्यवाद, (आ. परशुराम चतुर्वेदी) पृ० ६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धान्ततः नास्तिक की वह परिभाषा नितान्त असंगत है। नास्तिक और आस्तिक की परिभाषा वस्तुतः पारलौकिक अस्तित्व की स्वीकृति और अस्वीकृति पर निर्भर करती है। आत्मा और परलोक के अस्तित्व को स्वीकार करने वाला आस्तिक और उसे अस्वीकार करने वाला नास्तिक कहा जाना चाहिए था। पाणिनि सूत्र **"अस्तिनास्ति दिष्टं मतिः।"** (४.४-६०) से भी यह बात पुष्ट हो जाती है। जैनसंस्कृति के अनुसार आत्मा अपनी विशुद्धतम अवस्था में स्वयं ही परमात्मा का रूप ग्रहण कर लेता है। दैहिक और मानसिक विकारों से वह दूर होकर परमपद को प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार यहां स्वर्ग, नरक, मोक्ष आदि की व्यवस्था स्वयं के कर्मों पर आधारित है। अतः जैनदर्शन की गणना नास्तिक दर्शनों में करना नितान्त असंगत है।

अध्यात्मवाद और दर्शन

जहां तक अध्यात्मवाद और दर्शन के सम्बन्ध का प्रश्न है, वह परस्पराश्रित है। अध्यात्मवाद योगसाधना है जो साक्षात्कार करने का एक साधन है और दर्शन उस योग-साधना का बौद्धिक विवेचन है। अध्यात्मवाद तत्त्वज्ञान प्रधान है और दर्शन उसकी पद्धति और विवेचन करता है। अध्यात्मवाद अनुभूति पर आधारित है जबकि दर्शन ज्ञान पर आधारित है। इस प्रकार दर्शन अध्यात्मवाद से भिन्न नहीं हो सकता। अध्यात्मवाद की व्याख्या और विश्लेषण दर्शन की पृष्ठभूमि में ही संभव हो पाता है। दोनों के अंतर को समझने के लिए हम दर्शन के दो भेद कर सकते हैं—आध्यात्मिक रहस्यवाद और दार्शनिक रहस्यवाद। आध्यात्मिक रहस्यवाद आचार-प्रधान होता है और दार्शनिक रहस्यवाद ज्ञानप्रधान। अतः आचार और ज्ञान की समन्वयावस्था ही सच्चा अध्यात्मवाद अथवा रहस्यवाद है।

रहस्यभावना किसी-न-किसी सिद्धान्त अथवा विचारपक्ष पर आधारित रहती है और उस विचारपक्ष का अटूट सम्बन्ध जीवन-दर्शन से जुड़ा रहता है, जो एक नियमित आचार और दर्शन पर प्रतिष्ठित रहता है। साधक उसी के माध्यम से रहस्य का साक्षात्कार करता है। वही रहस्य जब अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आता है तो काव्य बन जाता है और जब विचार के क्षेत्र में आता है तो दर्शन बन जाता है। काव्य में अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रयत्न किया जाता है और उस अभिव्यक्ति में स्वभावतः श्रद्धा-भक्ति का आधिक्य हो जाता है। धीरे-धीरे अंध-विश्वास, रूढ़ियां, चमत्कार, प्रतीक, मंत्र-तंत्र आदि जैसे तत्त्व बढ़ने और जुड़ने लगते हैं।

अध्यात्मवाद बनाम रहस्यवाद के प्रमुख तत्त्व

रहस्यवाद का क्षेत्र असीम है, उस अनन्त शक्ति के स्रोत को खोजना ससीम शक्ति के सामर्थ्य के बाहर है। अतः ससीमता से असीमता और परम विशुद्धता तक पहुँच जाना तथा चिदानंद चैतन्यरस का पान करना साधक का मूल उद्देश्य रहता है। इसलिए रहस्यवाद का प्रस्थान-बिन्दु संसार है, जहां प्रात्याक्षिक और अप्रात्याक्षिक सुख-दुःख का अनुभव होता है और परम विशुद्धावस्था रूप चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है। वहां पहुँचकर साधक कृत-कृत्य हो जाता है और उसका भवचक्र सदैव के लिए समाप्त हो जाता है। इस अवस्था की प्राप्ति का मार्ग अत्यन्त रहस्य अथवा गुह्य है। इसलिए साधक में विषय के प्रति जिज्ञासा और औत्सुक्य जितना अधिक जागरित होगा, उतना ही उसका साध्य समीप होता चला जायगा।

रहस्य को समझने और अनुभूति में लाने के लिए निम्नलिखित प्रमुख तत्त्वों का आधार लिया जा सकता है—

१. जिज्ञासा और औत्सुक्य,
२. संसारी आत्मा का स्वरूप,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. संसार का स्वरूप,
४. संसार से मुक्त होने का उपाय (भेदविज्ञान) और
५. मुक्तावस्था की परिकल्पना—निर्वाण ।

रहस्यभावना का साध्य

रहस्यभावना का प्रमुख साध्य परमात्मपद की प्राप्ति करना है, जिसके मूल साधन हैं स्वानुभूति और भेदविज्ञान। किसी विषयवस्तु का जब किसी प्रकार से साक्षात्कार हो जाता है तब साधक के अन्तरंग में तद्विषयक विशिष्ट अनुभूति जागरित हो जाती है। साधना की सुप्तावस्था में चराचर जगत साधक को यथावत् दिखाई देने लगता है। उसके मन में रहस्य की यह गुत्थि जब समझ में आ जाती है कि संसार का प्रत्येक पदार्थ अशाश्वत है, क्षणभंगुर है, और यह सत्, चित् रूप आत्मा उस पदार्थ से पृथक् है, ये पदार्थ हमारे नहीं हो सकते और न हम कभी इन पदार्थों के हो सकते हैं तब उसके मन में एक अपूर्व आनन्दानुभूति होती है। इसे हम जैन शास्त्रीय परिभाषा में भेदविज्ञान कह सकते हैं। साधक को भेदविज्ञान की यथार्थ अनुभूति हो जाना ही रहस्यवादी साधना का साध्य कहा जा सकता है। विश्व-सत्य का समुचित प्रकाशन इसी अवस्था में हो पाता है। भेदविज्ञान की प्रतीति कालान्तर में दृढ़तर होती चली जाती है और आत्मा भी उसी रूप में परम विशुद्ध अवस्था को प्राप्त हो जाता है। इस अवस्था में पहुँचकर साधक अनिर्वचनीय अनुभूति का आस्वादन करता है। आत्मा की यह अवस्था शाश्वत और चिरन्तन सुखद होती है। रहस्यवादी का यही साध्य है। शास्त्रीय परिभाषा में इसे हम निर्वाण कह सकते हैं।

साध्य सदैव रहस्य की स्थिति में रहता है। सिद्ध हो जाने पर फिर वह रहस्यवादी के लिए अज्ञात अथवा रहस्य नहीं रह जाता। साधक के लिए वह भले ही रहस्य बना रहे। इसलिए तीर्थंकर ऋषभदेव, महावीर, राम, कृष्ण आदि की परम स्थिति साध्य है। इसे हम ज्ञेय अथवा प्रमेय भी कह सकते हैं।

इस साध्य, गेय अथवा प्रमेय की प्राप्ति में जिज्ञासा मूल कारण है। जिज्ञासा ही प्रमेय अथवा रहस्य तत्त्व के अन्तस्तल तक पहुँचाने का प्रयत्न करती है। तदर्थ साध्य के सन्दर्भ में साधक के मन में प्रश्न, प्रतिप्रश्न उठते रहते हैं, **"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"** इसी का सूचक है। **"नेति-नेति"** के माध्यम से साधक की रहस्यभावना पवित्रतम होती जाती है और वह रहस्य के समीप चला जाता है। फिर एक समय वह अनिर्वचनीय स्थिति को प्राप्त कर लेता है—**यतो वाचा निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह**। इस अनुभूतिपरक जिज्ञासा की अभिव्यक्ति के रूप में सृजित होने वाले काव्य के माध्यम से सहृदय व्यक्ति साधारणीकरण प्राप्त करता है और शनैः-शनैः साध्य दशा तक बढ़ता चला जाता है। अतएव इस प्रकार के काव्य में व्यक्त रहस्यभावना की गहनता और सघनता यथार्थ में काव्य की विधेयावस्था का केन्द्रबिन्दु समझना चाहिए।

रहस्यभावना का साधन

परम गुह्य तत्त्व रूप रहस्यभावना के वास्तविक तथ्य तक पहुँचने के लिए साधक को कुछ ऐसे शाश्वत साधनों का उपयोग करना पड़ता है जिनके माध्यम से वह चिरन्तन सत्य को समझ सके। ऐसे साधनों में आत्मा और परमात्मा के विशुद्ध स्वरूप पर चिन्तन-मनन करना विशेष महत्त्वपूर्ण है। जैनधर्म में तो आत्मतत्त्व इसी केन्द्र-बिन्दु के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इसी को कुछ विस्तार से समझने के लिए वहाँ समूचे तत्त्वों को दो भागों में विभाजित किया गया है—जीव और अजीव। जीव का अर्थ है आत्मा और अजीव का विशेषण, सम्बन्ध उन पौद्गलिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि अभिनन्दन ग्रन्थ

कर्मों से है जिनके कारण यह आत्मा संसार में बारम्बार जन्म-ग्रहण करता रहता है। इन कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से कैसे होता है, इसके लिए आस्रव और बन्ध शब्द आये हैं तथा उनसे आत्मा कैसे विमुक्त होता है, इसके लिए संवर और निर्जरा तत्त्वों को रखा गया है। आत्मा का कर्मों से सम्बन्ध जब पूर्णतः दूर हो जाता है तब उसका विशुद्ध और मूल रूप सामने आता है। इसी को मोक्ष कहा गया है।

इस प्रकार रहस्यभावना का सीधा सम्बन्ध जैन-संस्कृति में उक्त सप्त तत्त्वों पर निर्भर करता है। इन सप्त तत्त्वों की समुचित विवेचना ही जैन ग्रन्थों की मूल भावना है। आचारशास्त्र, विचारशास्त्र इन्हीं तत्त्वों का विश्लेषण करते हुए दिखाई देते हैं, अध्यात्मवादी ऋषि-महर्षियों और विद्वानों-आचार्यों ने रहस्यभावना की साधना में स्वानुभूति के साथ विपुल साहित्य सृजन किया है।

रहस्यभावना का साधक

'एकं हि सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' के अनुसार साधक एक ही परम सत्य को विविध प्रकार से अनुभव में लाते हैं और उसे अभिव्यक्त करते हैं। उनकी रहस्यानुभूतियों का धरातल पवित्र आत्मसाधना से मण्डित रहता है। यही साधक तत्त्वदर्शी और कवि बनकर साहित्य-जगत में उतरता है। उसका काव्य भावसौन्दर्य से निखरकर स्वाभाविक भाषा में निसृत होता है। फिर भी पूर्ण अभिव्यक्ति में असमर्थ होकर वह प्रतीकात्मक ढंग से भी अपनी रहस्यभावना को व्यक्त करने का प्रयत्न करता है। उसकी अभिव्यक्ति के साधन भाव और भाषा में श्रद्धा, प्रेम, भक्ति, उपालम्भ जैसे भाव समाहित होते हैं। साधक की दृष्टि सत्संगति और गुरुमहिमा की ओर जाकर आत्मसाधना के माध्यम से परमात्मपद की प्राप्ति की ओर मुड़ जाती है।

अध्यात्मवाद बनाम रहस्यवाद : एक विश्लेषण

उक्त सभी तत्त्वों पर आध्यात्मिक साधकों ने साहित्यिक रूप में पर्याप्त विवेचन किया है। इन अध्यात्मवादी साधकों की एक लम्बी परम्परा है। जिसमें आचार्य कुन्दकुन्द, मुनि कार्तिकेय, पूज्यपाद, योगीन्दु मुनि, मुनि रामसिंह, लक्ष्मीचन्द, आनन्दतिलक, महयंरिण, छीहल, बनारसीदास, भगवतीदास, रूपचन्द्र, ब्रह्मदीप, आनन्दघन, यशोविजय, भैया भगवतीदास, पांडे हेमराज, द्यानतराय, भूधरदास, दौलतराम, बुधजन, भागचन्द आदि का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने आत्मा के बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा के रूपों पर अनुभूतिमिश्रित सम्यक् विवेचन प्रस्तुत किया है।

इन साधकों के अध्यात्मवादी साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर पाठक को यह अनुभूति हुए बिना नहीं रहेगी कि वे परमात्मा के साक्षात्कार के लिए कितने आतुर रहे हैं। इस सन्दर्भ से उन्होंने अपने आराध्य तीर्थंकरों और परमेष्ठियों की स्तुतियां की हैं, भक्ति के प्रवाह में आकर अपना दास्यभाव प्रदर्शित किया है तथा नामस्मरण, सत्गुरुदर्शन आदि की महिमा का व्याख्यान किया है। इन सभी प्रसंगों में साधकों की गहन अनुभूति का पता चलता है। इसे हम समासतः इस प्रकार देख सकते हैं—

कुन्दकुन्द का साहित्य, विशेषतः पाहुड़ साहित्य रहस्यवाद की परम्परा का संस्थापक कहा जा सकता है। योगीन्दु, रामसिंह, बनारसीदास, द्यानतराय आदि कवियों के लिए वह उपजीवक रहा है। सकल-निकल परमात्मा का निरूपण, साकार-निराकार की भक्ति तथा सगुण-निर्गुण ब्रह्म की उपासना जैन साधकों ने अपने ढंग से की है। फागु, वेलि, रासा, स्तोत्र, चौपाई, बारहमासा, चरित्र, आयण आदि ऐसे ही माध्यम हैं जहां उनकी अनुभूति का स्वर गहरा हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'निरंजन' पद प्राप्त करने के लिए मन किस प्रकार से परमेश्वर में एकाकार और समरस हो जाता है, यह **योगीन्दु** मुनि द्वारा प्रस्तुत वर्णन में द्रष्टव्य है—

मणु मिलियउ परमेसरहं परमेसरु वि मणस्स ।
बीहि वि समरसि हूवहिं पुज्ज चडावउं कस्स ॥[३६]

इसी प्रकार मुनि **रामसिंह** के लिए यह समस्या खड़ी हो जाती है कि आत्मा और परमात्मा के मिलन पर किसे नमस्कार किया जाये ?[३७] शारीरिक दुःखों का आभास तभी तक होता है, जब तक यह समरसता नहीं आती—

देहमहेलो एह बढ तउ सत्तावइ ताम ।
चित्तु णिरंजणु परिणि सिहु समरसि होइ ण जाम ॥[३८]

छीहल तो निश्चयनय के रस में इतने सरावोर हो गये कि उन्हें आत्मा के विशुद्ध स्वरूप का आभास-सा हो गया । फलतः वे कहने लगे कि मैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र हूं, देहप्रमाण हूं, अखण्ड हूं, परमानन्द में विलास करने वाला हूं, हंस हूं, शिव हूं, बुद्ध हूं, वासुदेव हूं, कामदेव हूं—

हउं दंसण णाण चरित्त सुद्धु ।
हउं देह परमाणु वि गुण समिद्धु ॥
हउं परमाणदुं अखण्ड देसु ।
हउं णाण सरोवर परमहंसु ॥
हउं रयणत्तय चउविह जिणंदु ।
हउं बारह चक्केसर णरिंदु ॥
हउं णव पडिहर णव वासुदेव ।
हउं णव हलधर पुणु कामदेव ॥

बनारसीदास कहीं 'म्हारे प्रगटे देवनिरंजन' कहते हैं तो कभी 'देखो भाई महाविकल संसारी' को सोचते हुए 'मन की दुविधा कब जायेगी' इसकी चिन्ता उन्हें घर कर जाती है—

दुविधा कब जैहै या मन की ।
कब निजनाथ निरंजन सुमिरों, तज सेवा जन-जन की ॥ दुविधा० ॥१॥
कब रुचि सौं पीवें दृग चातक, बूंद अखयपद घन की ।
कब सुभ ध्यान धरौं समता गहि, करूं न ममता तन की ॥२॥
कब घट अन्तर रहे निरन्तर, दिढता सुगुरु वचन की ।
कब सुख लहौं भेद परमारथ, मिटै धारना धन की ॥३॥
कब घर छांड़ि होहुं एकाकी, लिए लालसा वन की ।
ऐसी दशा होय कब मेरी, हौं बलि-बलि वा छन की ॥४॥

बनारसीदास भाव-विभोर होकर द्वैत से अद्वैत की ओर पहुँच जाते हैं । उन्हें आत्मा रूपी पत्नी का परमात्मा रूपी पति से वियोग दुःसह्य हो उठता है । पत्नी "जल बिनु मछली" जैसी तड़पती है, फिर 'समता' सखी से अपने भावी मिलन की बात कहकर आनन्दित हो जाती है । अन्त में उसे

३६ परमात्मप्रकाश, १२
३७ दोहापाहुड़, ४६
३८ वही, ६४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना पति घर में ही मिल जाता है। मिलने पर वे दोनों किस प्रकार एकाकार और समरस हो जाते हैं, यह निम्न पद्यों से देखिये—

पिय मोरे घट मैं पिय माहिं, जलतरंग ज्यों दुविधा नाहिं।
पिय मो करता मैं करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञानविभूति।।
पिय सुखसागर मैं सुख-सींव, पिय शिव मन्दिर मैं सिव-नींव।
पिय ब्रह्मा मैं सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम।।
पिय शंकर मैं देवि भवानि, पिय जिनवर मैं केवलवानि।
पिय भोगी मैं भुक्तिविशेष, पिय जोगी मैं मुद्राभेष।।[३९]

रूपचन्द ने परमात्मा की महिमा को जानने का अथक प्रयत्न किया, पर जान नहीं सके। तब कह उठे—

प्रभु तेरी महिमा जानि न जाई।।
नय विभाग विन मोह मूढ जन, मरत बहिर्मुख धाई।।१।।
विविध रूप तव रूप निरूपत, बहुतें जुगति बनाई।
कलपि कलपि गज रूप अंध, ज्यों झगरत मत समुदाई।।२।।
विश्वरूप चिद्रूप एक रस, घट घट रह्यउ समाई।
भिन्न भाव व्यापक जल थल, ज्यौं अपनी दुति दिनराई।।३।।
मारयउ मन जारयउ मनमथु, अरु प्रति पाले खटुकाई।
बिनु प्रसाद विन सासति, सुरनर फणियत सेवत पाई।।४।।
मन वच करन अलख निरंजन, गुण सागर अति साई।
रूपचन्द अनुभव करि देखहुं, गगन मंडल मनु लाई।।५।।

द्यानतराय साधना करते-करते जब थक गये तो दीनदयाल को उलाहना देते हुए कहते हैं कि तुम तो मुक्ति में जाकर बैठ गये और हम अभी संसार में ही भटक रहे हैं। तीनों काल तुम्हारा नाम जपने पर भी तुम हमको कुछ नहीं देते और कुछ नहीं तो कम-से-कम हमारे राग-द्वेष को तो टाल दो—

तुम प्रभु कहियत दीनदयाल।।
आपन जाय मुकति में बैठे, हम जु रुलत जग जाल।।१।।
तुमरो नाम जपें हम नीके, मन वच तीनों काल।
तुम तो हमको कछु देत नहिं, हमरो कौन हवाल।।२।।
बुरे भले हम भगत तिहारे, जानत हो हम चाल।
और कछूनहिं यह चाहत हैं, राग-दोष को टाल।।३।।
हम सौं चूक परी सो बकसो, तुम तो कृपा विशाल।
द्यानत एक बार प्रभु जगतें, हमको लेहु निकाल।।४।।

इस प्रकार जैन कवियों ने **'आतमराम'** की बात कहकर **'परमातम'** की अनुभूति को विविध रूप से निहारा है। उन्होंने जैनेतर देवों को भी नमस्कार करने में हिचक नहीं दिखाई, बशर्ते कि वे वीतरागी हैं। वीतरागी परमात्मा की स्तुति में उन्होंने कहीं दास्यभाव उकेरा है तो कहीं दाम्पत्य-

---

३९ बनारसीविलास, पृ० १६१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव, कहीं सखिभाव से बात की है तो कहीं उपालम्भ से। यहीं उनकी भावात्मक अनुभूति और अध्यात्मवाद अथवा रहस्यवाद की स्वीकृति मिलती है।

अध्यात्मवादी जैन साधकों की तुलना जैनेतर साधकों से करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रारम्भ में जैनेतर साधकों और संतों ने जैन साधकों से बहुत कुछ लिया है। कबीर आदि सन्त तो निश्चित ही उनसे बहुत प्रभावित रहे हैं। मुनि योगीन्दु और रामसिंह कबीर से शताब्दियों पूर्व हुए थे। कबीर ने उनके भावों को ग्रहण कर अपने काव्य में उन्हें खूब गूंथा है। बाह्याडम्बर का खण्डन-मण्डन, दास्यभाव की अनुभूति आदि कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो कबीर ने जैन साधकों से ग्रहण किये हैं। जायसी के रूपकतत्त्व, मीरा की रहस्यभावना, तुलसी की भक्ति-साधना और सूरदास का वात्सल्यरस रहस्यवाद के निश्चित ही अमूल्य रूप हैं। पर उनके मूल में भी जैन कवियों की भाव-प्रेरणा दृष्टव्य है। निबन्ध के विस्तारभय से उसे हम यहां प्रस्तुत नहीं करना चाहेंगे। यह तुलनात्मक अध्ययन अपेक्षित है।

इस प्रकार जैन अध्यात्मवाद अपने विविध रूपों में आधुनिक रहस्यवाद तक आ पहुंचा है। उसमें विकास के अनेक चरण देखे जा सकते हैं। श्रद्धा-भक्ति और प्रेम की त्रिवेणी के संगम से जो भावधारा यहां कवियों में फूटी है, वह अन्य कवियों को प्रेरक तो बनी ही है, साथ ही सूक्ष्म भावों की प्रस्तुति का एक मानदण्ड भी प्रस्थापित हो गया है।

□

आनन्द-वचनामृत

- □ विवेक ही वह संजीवनी औषधि है जो कृति (कर्म में सत्कृति, संस्कृति और शुक्रृति का प्राण संचारण करता है।
- □ जैसे पर्वत-शिखर पर चढ़ने के लिए चढ़ाई की, श्रम और दृढ़ अभ्यास आवश्यक है वैसे ही उन्नति एवं अभ्युदय के लिए कष्ट भोग की अनिवार्यता है।
- □ स्वार्थ से परार्थ और परार्थ की ओर बढ़ते जाना जीवन का आध्यात्मिकता आरोहण है।
- □ तीव्र शारीरिक वेदना के क्षणों में भी मानसिक शांति की अनुभूति करने का एक सरल उपाय है—देह के साथ आत्मा की भिन्नता का अनुभव करना। देह को नश्वर जानकर अमर आत्मा का दर्शन करनेवाला किसी भी पीड़ा-वेदना एवं व्यथा से उसी प्रकार क्षुब्ध नहीं होता जैसे वातानुकूल (एयरकंडीसन) भवन में बैठने वाला बाहर की सर्दी-गर्मी से।
- □ जिस प्रकार पुण्य सलिला गंगा का पवित्र जल चाहे मिट्टी के घट में भरा हो, या स्वर्ण-पात्र में, वह तो सदा ही अभिषेकार्ह माना जाता है। उसी प्रकार महापुरुष का जीवन चरित्र चाहे ललित काव्यात्मक भाषा में लिखा हो, अथवा सामान्य शब्दावली में वह सदा ही पठनीय एवं वंदनीय होता है।

☆

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org